'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ६ | वाराणसी, मंगलवार, १३ जनवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

धाणधा (गुजरात) २-१-'५९

मैं नया समाज बनाना चाहता हूँ

अब हम नया समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें सभी एक-दूसरे का सहयोग करें—हिल-मिलकर काम करें और परिवार के लोगों की तरह एक-दूसरे के साथ प्रेम और स्नेह से रहें। वे एक-दूसरे की चिन्ता करें और एक-दूसरे के दुःख में दुःखी हों। इस तरह हमारा सारा ग्राम-समाज एक परिवार जैसा बने। इससे सारे गाँव की दौलत सभी गाँववालों को मिलेगी, एक-दूसरे में खूब प्रेम बढ़ेगा और समाज एकरस बनेगा, जिससे समाज की ताकत बढ़ेगी।

उत्पादन के साधन सबके होंगे

इस नये समाज में जमीन आदि उत्पादन के सभी साधन, जिनसे लक्ष्मी और अन्न पैदा होता है, सबके होंगे। हवा और पानी की तरह जमीन भी सारे गाँव की ही होगी। फिर गाँववाले सभी मिलकर स्वयं ही गाँव का व्यवहार चलायेंगे। जिससे सबका समाधान हो, ऐसा ग्राम-स्वराज्य ला सकेंगे। इस नये समाज का नाम सर्वोदय-समाज होगा।

सभीका कल्याण सोचा जायगा

इस समाज में सभीका कल्याण सोचा जायगा। अमुक सुखी रहे और अमुक दुःखी, ऐसा नहीं रहेगा। आज तो इसके विपरीत स्थिति है। आज तो रोगी का जो दुःख है, वही डॉक्टर का सुख होता है। यह तो मैंने एक दृष्टान्त बताया। यही बात सर्वत्र है। सच पूछें तो अभी तक वास्तविक समाज बना ही नहीं है। फिर यह क्या बना हुआ है? भिन्न-भिन्न जातियों के बाड़े बने हुए हैं। हम उन्हें ही तोड़ना चाहते हैं।

प्रेम से ही जातियों के बाड़े टूटेंगे

प्रश्न है इसे कैसे तोड़ा जाय? इसके लिए हमें सबपर प्रेम करना चाहिए। प्रेम में यह अमुक जाति, यह अमुक जाति—इस तरह भेद नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी जातिवाला हो, उसे भूख-प्यास, जन्म-मरण, भावना और प्रेम की जरूरत हुआ ही करती है। ये सब चीजें सबके लिए सुलभ होनी चाहिए। सारांश, यदि हम सबपर समान रूप से प्रेम करें तो उससे जाति पर प्रहार होगा। इसमें और कुछ नहीं करना पड़ेगा। जो प्रेम हम अपनी जाति पर करते हैं, उसे ही दूसरी पर भी करना चाहिए। प्रेम में किसी तरह का फर्क न किया जाय।

यह बात जरा कठिन मालूम पड़ती है। मैं भी नहीं कहता कि यह बहुत सरल है, फिर भी जरा विचार करें तो यह बात हो सकती है। कारण, यह जमाना ही ऐसा है कि लोग अलग-अलग रहकर अपनी-अपनी ही सोचें, घर में ही प्रेम करें और घर के बाहर कम प्रेम करें तथा दूसरों के लिए बेपरवाही रखें तो गाँव बन नहीं सकते, गाँव टिक नहीं सकते, सभी गाँव टूट जायँगे।

विज्ञान-युग में प्रेम अत्यावश्यक

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान से बहुत-से लाभ मिल सकते हैं। यह हमें नये-नये औजार देता है। यह लाउडस्पीकर ही देखिये, इसीके कारण इतनी बड़ी सभा में लोग अपनी-अपनी जगह बैठकर मेरा भाषण पूरी तरह सुन पाते हैं। पानी निकालने का औजार ऐसा मिल गया है कि हजारों फुट नीचे से हम पानी निकाल सकते हैं। विज्ञान के ही कारण एक-दो दिनों में हम यहाँ से इंग्लैंड पहुँच जाते हैं, जब कि अंग्रेजों को पहले यहाँ आने में आठ-आठ महीने लग जाते थे। अब तो काठियावाड़ में जंगल की कमी होने से चरने के लिए गायों को इंग्लैण्ड, अमेरिका तक भेजा जा सकता है। इस तरह स्पष्ट है कि आज सारे विश्व से संपर्क स्थापित हो गया है। ऐसी स्थिति में यदि हम प्रेम को संकुचित रखें, घर तक ही सीमित रखें तो चल नहीं सकता। इससे गाँवों में, शहरों में, प्रान्तों में, देश में और देश-देश के बीच भी विरोध पैदा हो सकता है। आज ऐसे-ऐसे भयंकर संहारक नये-नये शस्त्र तैयार हो रहे हैं। उससे सभी मानव बहुत ही दुःखी होंगे। इसलिए इस जमाने में प्रेम की आवश्यकता है।

व्यापक प्रेम-भावना कठिन नहीं

जब जिस वस्तु की जरूरत पड़ती है, तब वह सुलभ हो जाती है। यह ईश्वरीय सृष्टि-रचना की विशेषता है। आज प्रेम की अत्यावश्यकता है, इसलिए प्रेम अवश्य पैदा होगा। यद्यपि यह साधारणतः बहुत कठिन काम कहा जायगा, लेकिन इस जमाने के लिए यह बहुत सरल काम है। दूर-दूर से लोग आज एक-दूसरे को मदद करने लगे हैं, इसीसे यह बात स्पष्ट है। इंग्लैण्ड का टेनीसन नामक व्यक्ति मेरी तरह पैदल चलकर घर-घर पहुँचता और हिन्दुस्तान में कुएँ बनाने के लिए मदद माँगता है। वह धन संग्रह कर हमारे पास भेजता है। उसकी मदद से

बिहार और उड़ीसा में कितने ही कुएँ भी बन गये। इस तरह आज दूर-दूर के लोगों की मदद और प्रेम मिलने लगा है।

यह एक नयी आवश्यकता है। इसलिए मानव का हृदय विशाल होना चाहिए। हृदय विशाल करने पर ही वह छुटकारा पा सकता है। यदि हम अपना हृदय विशाल नहीं बनायेंगे तो मार खायेंगे। सारांश, इस तरह हम सभीपर प्रेम करें तो जाति-भेद टूट पड़ेंगे, क्योंकि सबका अधिकार, प्रतिष्ठा समान रहेगी। सबका खाना-पीना और मजदूरी समान रहेगी, जो मजदूरी किसान, बुनकर को मिलनी चाहिए। हमें ऐसा ही समाज खड़ा करना है।

क्या चातुर्वर्ण्य मिटाना आवश्यक ?

आज एक भाई ने प्रश्न पूछा कि "जब तक चातुर्वर्ण्य नहीं मिटेगा, तब तक जाति-भेद मिट नहीं सकते। इसलिए प्रहार करना ही है तो चातुर्वर्ण्य पर ही किया जाय।" मैं कहता हूँ कि आज चातुर्वर्ण्य है ही कहाँ? इसलिए चातुर्वर्ण्य के मिटाने की बात ही नहीं है। सबको खाने-पीने को मिले, कोई ऊँच-नीच न हो, सबको विकास का सामान अवसर मिले, यही आज की जरूरत है। इसलिए इस समय केवल जाति-भेद मिटाने का ही काम है, चातुर्वर्ण्य मिटाने का नहीं। वास्तव में चातुर्वर्ण्य क्या है, यह समझना हमारे लिए लाभप्रद है। कारण, यदि हम उसे समझ लेते हैं तो हमारे पूर्वजों ने जो रचना कर रखी है, उसमें हम विशेष सुधार कर पायेंगे और उसका लाभ उठा सकेंगे। चातुर्वर्ण्य कहाँ-कहाँ था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के बारे में उनकी क्या कल्पना थी, यह हमें समझ लेना चाहिए।

चातुर्वर्ण्य के लाभ

सच पूछें तो चातुर्वर्ण्य में परस्पर एक-दूसरे से विवाह करने में किसी तरह की बाधा नहीं थी। दूसरी बात, चातुर्वर्ण्य में सबको समान रूप से मोक्ष मिलता था। ब्राह्मण को अधिक मोक्ष और शूद्र को कम, ऐसी बात नहीं थी। हरएक अपना-अपना काम करके भी मोक्ष का समानभागी होता था। मोक्ष की दृष्टि से चारों वर्णों की योग्यता समान मानी जाती थी। तीसरी बात, चातुर्वर्ण्य में सभीको मेहनताना समान मिलता था। विद्वान् को अधिक और किसान को कम, ऐसी कोई बात नहीं थी। विद्वान् भी आठ आठ घंटे संतोषपूर्वक विद्यार्थियों को पढ़ाता था। आज तो जो जितना अधिक पढ़ता और पढ़ाता है, वह उतना अधिक वेतन माँगता है। यह बात चातुर्वर्ण्य की कल्पना में ही नहीं आती। चातुर्वर्ण्य में चौथी बात यह आती है कि बच्चों के जनमते ही बचपन से ही उसे व्यवसाय मिल जाता था। सरकार को उसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता था। बाप का व्यवसाय ही बच्चे का भी व्यवसाय माना जाता था और उसे ही वह चलाता था। एक बार चाभी देते ही चल पड़ता था। आजकल तो अपने-आप चलनेवाले यन्त्र निकल पड़े हैं। इसी तरह उन दिनों भी अपने ही बल पर चलनेवाला समाज था। लोग अपना व्यवसाय अपने घर पर ही सीख लेते थे।

घर का व्यवसाय ही क्यों किया जाय ?

कई लोग पूछते हैं कि "हम अपने बाप का व्यवसाय ही क्यों करें? दूसरा व्यवसाय सीखेंगे तो आर्थिक दृष्टि से लाभ भी होगा। इसलिए दूसरों का व्यवसाय भी सीखना ही चाहिए।" लेकिन चातुर्वर्ण्य में कोई भी व्यवसाय कम या अधिक नहीं होता था। इसलिए अपने घर का व्यवसाय छोड़कर व्यर्थ ही क्यों कर दूसरे का व्यवसाय किया जाय? अमुक धंधेवाले को अमुक पैसा, यह बात तो चातुर्वर्ण्य में है ही नहीं। फिर भी कोई ऐसा निकले, जो अपने हृदय के विकास के लिए, सेवा के लिए दूसरे के व्यवसाय में भाग लेना चाहे तो वैसा खुशी से कर सकता है। सेवा और हृदय-विकास के लिए दूसरे का व्यवसाय करने में किसी तरह की बाधा नहीं। फिर भी साधारणतः दूसरे का व्यवसाय नहीं किया जाता था, क्योंकि चातुर्वर्ण्य में अधिक पैसे का मोह ही नहीं था। इससे आप समझ सकते हैं कि चातुर्वर्ण्य कहाँ है और जाति-भेद कहाँ? जहाँ चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था की बात है, वहीं जातिभेद की बात है। जातिभेद में ऊँच-नीच भाव, छोटे-छोटे बाड़े और उनके बीच भी झगड़े की बात है, किन्तु चातुर्वर्ण्य में ऐसी बात नहीं है।

भगवान कृष्ण का उदाहरण

आप जानते हैं कि भगवान कृष्ण क्षत्रिय थे, लेकिन जब आवश्यकता पड़ी, अर्जुन ने प्रश्न पूछे तो उन्होंने ब्राह्मण का काम किया। वे क्षत्रिय तो थे ही और क्षत्रिय का काम करते ही थे, लेकिन गायों को रखने का वैश्यों का काम भी करते थे। इतना ही नहीं, युद्ध में अर्जुन के सारथी बनकर शाम को घोड़े की सेवा याने शूद्र का काम भी वे करते थे। इस तरह सेवा के तौर पर श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के काम किये। फिर भी व्यवसाय हो, वही करना चाहिए। यही पुरानी चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था है।

चार आश्रमों की व्यवस्था भी महत्त्वपूर्ण

इस चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था के साथ-साथ हमारे यहाँ आश्रम-व्यवस्था भी थी। मानव की आयु जैसे-जैसे बढ़ती जाय, वैसे ही वैसे एक-एक कदम आगे बढ़े। नन्हा विद्यार्थी गुरु के पास जाय और वहाँ जाकर विद्या सीखे। फिर गृहस्थाश्रम में जाकर अपना कर्तव्य पूरा करे। फिर उससे मुक्त होकर, वासना से मुक्त होकर समाज की सेवा के लिए चला आये। और संन्यास-आश्रम में केवल ईश्वर का चिन्तन करे। यह सारी कल्पना बहुत ही अच्छी थी और इस तरह नये सिरे से समाज की स्थापना करने की आवश्यकता है। यदि हम एक-दूसरे पर समान प्रेम रखें तो चातुर्वर्ण्य की यों ही स्थापना हो जायगी। उसकी स्थापना करने की कोई आवश्यकता नहीं। आज की गलत समाज-रचना मिटा देने पर वह स्वभावतः हो जायगी। इस तरह ऋषियों ने चातुर्वर्ण्य की जो कल्पना की, उसमें कुछ भी दोष नहीं था। दोष केवल जातियों में ही था। इसलिए यदि हम चातुर्वर्ण्य पर प्रहार करेंगे तो जातिभेद को बल मिलेगा। इसलिए चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था को अच्छा मानकर ही बरताव करना चाहिए।

चातुर्वर्ण्य और जातिभेद भिन्न-भिन्न

आज ऐसा भ्रम व्याप्त है कि जाति-भेद और चातुर्वर्ण्य दोनों एक ही हैं। किन्तु दोनों सर्वथा विरुद्ध चीजें हैं। जातियों को तोड़ने पर चातुर्वर्ण्य की स्थापना अपने-आप हो जायगी। यदि चातुर्वर्ण्य की भी स्थापना करनी पड़े तो वह चातुर्वर्ण्य ही नहीं रहेगा। कारण, वह स्थापना करने की चीज नहीं। हमें यही करना है। जब समाज एकरस बनेगा, तभी सर्वोदय-समाज बनेगा। उसमें लोग अपने-अपने व्यवसाय नहीं छोड़ेंगे। उसकी प्रेरणा ही नहीं मिलेगी।

सर्वोदय-पात्र की स्थापना करें

इस गाँव में सर्वोदय-पात्र की स्थापना होनी चाहिए। हर घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय और फिर हममें से ही कोई शान्ति-सैनिक बने। यह शान्ति-सैनिक पूरे गाँव की सेवा करे। यह सब आप लोगों को जी० जी० भाई के साथ मिलकर तय कर लेना चाहिए। अपने गाँव में सर्वोदय-पात्र की व्यवस्था करने के साथ ही दूसरे गाँवों में भी वह किस तरह की जा सकती है, इसपर भी विचार करें।

[सभा में एक भाई बीड़ी पीता था। उसकी दुर्गन्धि पू० विनोबाजी की नाक तक पहुँची। इसीलिए उन्होंने बीच में ही बीड़ी फेंक देने के लिए कहा। इसी प्रसंग को स्मरण कर उन्होंने अपने प्रवचन में आगे कहा।]

कृपया बीड़ी पीना छोड़ दें

सभा में एक भाई बीड़ी पीते थे। उन्हें बीच सभा में ही मैंने रोक दिया, इसलिए उनसे क्षमा चाहता हूँ। साधारणतः इस तरह मैं किसीको टोकता नहीं, फिर भी मेरी घ्राणेन्द्रिय अत्यधिक तीव्र संवेदना का अनुभव कर सकती है। बचपन में मेरी माँ मुझसे कहती थी कि "विन्या! शायद पूर्वजन्म में तू सिंह होगा, क्योंकि सिंह की घ्राणेन्द्रिय अत्यन्त तीव्र हुआ करती है। उसे बहुत दूर की और हल्की गंध का अनुभव हो सकता है। इसी तरह तेरी घ्राणेन्द्रिय की संवेदन-शक्ति भी अति तीव्र है।" सारांश, मुझे किसी भी तरह की गंध तत्काल आ जाती है। इसलिए बीड़ी पीने से उसका धुँआ निकलकर वातावरण अशुद्ध हो जाता है। उससे आपकी ही हानि है। आपकी छाती कमजोर हो जायगी। संपत्ति व्यर्थ नष्ट होगी और उससे अनेक बड़े-बड़े रोग भी होंगे। इसलिए ऐसे व्यसन छोड़ देने चाहिए। उससे समाज की हानि होती है। मैं पुनः आपसे क्षमा माँग सबसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे व्यसन छोड़ दें। ◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन

खंभात (खेड़ा) ६-११-'५८

खेड़ा जिले से तीन अपेक्षाएँ

आज की प्रार्थना-सभा खेड़ा जिले की आखिरी प्रार्थना-सभा है। इस यात्रा में समुद्र पार करके कल सौराष्ट्र में प्रवेश होगा। यह जिला हिन्दुस्तान के दूसरे जिलों के प्रमाण में कुछ सुखी जिला कहा जाता है। अब सवाल पैदा होता है कि ऐसे जिले में सर्वोदय-पात्र, शान्ति-सेना और ग्रामदान का कार्यक्रम चलेगा क्या? लोग यह संदेश ग्रहण करेंगे क्या?

समाज-सेवा सबका कर्तव्य

खेड़ा जिले में सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम सौ प्रतिशत पूरा हो सकता है और पूरा होना भी चाहिए; क्योंकि प्रेम और शान्ति का नाम लेकर एक मुट्ठी अनाज देने की प्रथा प्रत्येक धर्म में है। इस्लाम में, हिन्दू-धर्म में, जैन-धर्म में समाज के लिए कुछ-न-कुछ देने की प्रथा सर्वत्र है। यह नयी बात नहीं है। सब धर्मों का यह संदेश है कि पहले समाज के लिए देना चाहिए, फिर अपने घर के लोगों के लिए देना चाहिए, उसके बाद अपने लिए लेना चाहिए। यह क्रम केवल धर्म की किताबों में ही नहीं है, मनुष्य के हृदय में भी पड़ा है। हम जानते नहीं हैं तो भी मनुष्य सबसे ज्यादा चिन्ता समाज की ही करता है। व्यापारी स्वयं जितना समय घर में नहीं देता है, उतने से ज्यादा समय व्यापार में देता है। व्यापार सार्वजनिक सेवा है। नौकरों का ज्यादा-से-ज्यादा समय नौकरी में जाता है। प्रोफेसरों का समय ज्यादा-से-ज्यादा शिक्षण, अध्ययन और अध्यापन में जाता है। इतना करने के बाद वे घर के लिए समय देते हैं। वास्तव में वह उनकी सार्वजनिक सेवा है। उसी तरह से किसान अपने खेत की सेवा में बहुत ज्यादा समय देता है और अपने घर में लड़के-बच्चों को बहुत कम समय देता है। उसका सारा दिन खेत में जाता है। खेती की फसल सारे देश के लिए होती है। इसलिए यह सार्वजनिक सेवा का, महत्त्व का काम है। इसी तरह से माता-पिता घर के लड़के को पहले खिलाते हैं और फिर स्वयं खाते हैं। इसलिए कि घर के दूसरे लोगों का महत्त्व ज्यादा है और अपना कम है, ऐसा वे मानते हैं। हर घर में यह होता है। समाज का महत्त्व सबसे ज्यादा है, उससे कम घर का है और घर से भी कम महत्त्व अपना स्वयं का है। इसलिए पहले समाज को देने के बाद हमें भोग करना है, यह बात केवल धर्म-ग्रन्थों में नहीं है, लोग उस मुताबिक आज भी बरतते हैं। लोग अगर प्रामाणिकता से व्यापार करें, नौकरी करें, सत्य-निष्ठा रखें, किसीको चूसें नहीं, शोषण न करें तो लगभग सारे लोग राष्ट्र-सेवक और समाज-सेवक हैं। प्रामाणिकता से नीति-नियमों का पालन करें तो प्रोफेसर, व्यापारी, शिक्षक, भंगी, सिपाही—सब राष्ट्र की सेवा करते हैं।

सिर्फ एक मुट्ठी अन्न की माँग

मैं तो एक मुट्ठी अनाज माँगता हूँ। यह कोई कठिन चीज नहीं है। इस जिले में यह अच्छी तरह से हो सकती है। यह एक मुट्ठी अनाज दरिद्री लोगों के लिए नहीं है, उनके लिए तो मैं छठा हिस्सा ही माँगता हूँ। मुट्ठीभर अनाज जो माँग रहा हूँ, वह शांति और अहिंसा के लिए अर्पण होगा। अपने घर में मैं शांति रखना चाहता हूँ और अहिंसा में मेरी श्रद्धा है और इस अहिंसा के लिए मेरा मत है। इस एक मुट्ठी अनाज से मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे घर से एक भी पत्थर नहीं फेंका जायगा और शान्ति-सैनिक शांति के लिए जो काम करेंगे, उसमें हमारी पूरी सहानुभूति और सम्मति रहेगी। उसके प्रतीक के रूप में अपने घर में हम सर्वोदय-पात्र रखते हैं।

शान्ति-सैनिक में क्षोभ न हो

आज सुबह स्वागत में बहुत बहनें सर्वोदय-पात्र सिर पर लेकर आयी थीं। वह बहुत सुन्दर प्रदर्शन था। परन्तु खेड़ा जिले में तो मुझे सौ प्रतिशत सर्वोदय-पात्र चाहिए। यह पराक्रम किये बिना नहीं चलेगा। सार्वजनिक सभा करके भी और घर-घर जाकर भी यह बात समझानी चाहिए। आज ही एक भाई मुझसे पूछते थे कि इस खेड़ा जिले में शांति-सैनिक कम होंगे कि ज्यादा? मैं मानता हूँ कि इस जिले में ज्यादा सैनिक होने चाहिए। अभी तक जितनी हलचल हुई, उसमें खेड़ा जिले में से ज्यादा-से-ज्यादा मनुष्य देश के आन्दोलनों में गये हैं। तो फिर इस जिले से शांति-सैनिक कम मिलेंगे, ऐसा मानने के लिए कोई कारण नहीं है। उल्टे, खेड़ा जिला शान्ति-सेना में पिछड़ा रहेगा तो वह अपमानजनक होगा। यह बात सही है कि इस जिले के लोग जरा गरम मिजाज के हैं और शान्ति-सेना में तो स्वभाव ठंडा चाहिए। इस कारण मुश्किल मालूम होती होगी। परन्तु शान्ति-सेना में तो

मगज ठंडा रखना चाहिए, नहीं तो शान्ति-सेना का काम ही नहीं होगा। अगर दिमाग ठिकाने पर नहीं होगा तो शान्ति-सेना का ही नहीं, लश्कर का काम भी नहीं चलेगा।

आज का सेनापति लड़ने के स्थान से सौ मील दूर तम्बू में नक्शा लेकर बैठा रहता है और शत्रु-सेना की गति देखकर हुक्म देता है कि इस दिशा में दो फर्लांग आगे बढ़ो। इस हुक्म के मुताबिक उसकी सेना आगे बढ़ती है। इसमें क्षोभ का कोई कारण नहीं है। इतना ही नहीं, आज तो जो शस्त्र इस्तेमाल करते हैं, वे भी तलवार के जैसे नहीं रहते हैं कि जिससे क्षोभ उत्पन्न हो। आज जिन शस्त्रों का उपयोग होता है, वे दूरवाले होते हैं। इसलिए क्षोभ के लिए कोई अवकाश नहीं रहता है। अगर कोई नजदीक में तलवार उठाये और उसके सामने दूसरा कोई तलवार न उठा सके तो उसे गुस्सा आता है। परन्तु अभी तो इतने दूर से शस्त्र फेंके जाते हैं कि क्षोभ के लिए कारण ही नहीं रहता है। अर्जुन की तरह दूर से देखकर, ध्यानपूर्वक लक्ष्यवेध करना होता है। उसमें क्षोभ के लिए कोई अवकाश नहीं। जब लश्कर में क्षोभ को अवसर नहीं तो शांति-सेना में तो हो ही नहीं सकता, यह कोई नयी बात नहीं है। युद्ध में क्षोभ नहीं चाहिए। यह विज्ञान-युग की आवश्यकता है। विज्ञान-युग में मनुष्य क्षोभ से काम में नहीं लग सकता है। सार्वजनिक काम हो, घर का काम हो या लश्कर का काम हो—सबमें शान्त मन से काम करना चाहिए, ऐसी आवश्यकता आज के जमाने की है। कूटनीतिज्ञ आमने-सामने बैठकर अगर चिढ़कर बात करेंगे तो वे कूटनीतिज्ञ नहीं। मेरे जैसे साधक को भी अगर क्षोभ आ जायगा तो सामनेवाले को भी गुस्सा आ जायगा। इसलिए आज खानगी या सार्वजनिक हिंसक या अहिंसक—किसी भी क्षेत्र में, किसी भी व्यवहार में क्षोभ को अवकाश नहीं। अगर क्षोभ का उपयोग होगा तो हम हार भी खायेंगे और मार भी।

शान्ति-सेना में क्षोभ को अवकाश नहीं, इसलिए जो लोग क्षोभ करेंगे और क्रोध करेंगे, वे हार खानेवाले हैं या मार खानेवाले हैं। इसके लिए मानसिक परिवर्तन करना पड़ता है। मानसिक गुस्सा हृदय में संग्रह करना चाहिए और प्रयत्न करना चाहिए कि वह बाहर न आये। अगर हम भाप को रोक रखेंगे, बाहर जाने नहीं देंगे तो उसमें से शक्ति पैदा होगी। इसी तरह से हम वाणी में गुस्सा प्रकट कर देंगे तो बल नहीं रहेगा। गुस्से को हृदय में संग्रह करेंगे तो उसमें से शक्ति उत्पन्न होगी। इसलिए इस गुस्से को मैं आपको अपने हृदय में संग्रह करने के लिए कहता हूँ।

ग्रामदान की सम्भावनाएँ

खेड़ा जिले में ऐसा कुछ नहीं है कि यहाँ ग्रामदान न हो। बहुत लोग कहते हैं कि यहाँ जमीन महँगी है। यहाँ तो दक्षिण अफ्रिका से पैसा भी आता है। दूध बेचकर बंबई का पैसा भी आता है। जमीन में तंबाखू बोकर यहाँ पैसा प्राप्त किया जाता है। लूणज से लवण नहीं, तेल निकाला। यहाँ चारों बाजू से पैसा प्राप्त करने का तन्त्र खड़ा किया गया है। आज मुझे एक भाई ने कहा कि इस जिले से बहुत लोग दक्षिण अफ्रिका में गये हैं। एक कहावत है कि "जो जाय जावे, ते पाछु न आवे। ने आवे तो पोरिया ने पोरिया आवे एटलुं धन लावे" इसलिए जो मनुष्य परदेश जाता है, वह या तो परदेश से वापस नहीं आता है और आता है तो बहुत धन लेकर आता है। इसलिए इस जिले के जो सयाने मनुष्य हैं, वे दूसरे प्रान्तों में जाते हैं।

गाँव की श्रम-शक्ति और बुद्धि-शक्ति बाहर जाती है तो गाँव में जो रहते हैं, वे मूरख ही रहते हैं। और फिर भले ही गाँव को पैसा चाहिए, उतना मिलता हो, परन्तु विद्या तो गाँव के बाहर से जाती है। इसलिए बहुत ज्यादा आधार पैसे पर, तमाखू पर और दूध बेचकर पैसा लाने पर नहीं रखना चाहिए। उसके बदले दूध पियेंगे तो मजबूत बनेंगे और बुद्धि भी अच्छी रहेगी। जो जमीन सुवर्ण पैदा कर सकती है, उसमें जहर पैदा करने का काम नहीं करना चाहिए। जमीन से तमाखू पाना देश का नुकसान करना है। केवल पैसे पर आधार रखनेवाली व्यवस्था बदलनी चाहिए, तभी सारे सुखी होंगे नहीं तो सुखी नहीं होंगे। पैसा तो लफंगा है। आज एक चीज बोलता है, कल दूसरी और परसों तीसरी। आज रुपये में एक सेर अनाज मिलता होगा तो कल उससे कम मिलेगा। उसका स्थिर मूल्य नहीं है।

ग्रामदान से ही गाँव बचेंगे

मान लीजिये कि कल दुनिया में लड़ाई शुरू हो तो देश का आयात-निर्यात नहीं चलेगा। परिणामस्वरूप पंचवर्षीय योजना कागज के महल के जैसी टूट पड़ेगी। वैसी स्थिति में गाँव में दूध और अनाज न हो और पैसा ही हो तो गाँव का जीवन बहुत कठिन हो जायगा। उस अवस्था में हम गाँवों को बचा नहीं सकते हैं। अपनी सरकार है, इसलिए गाली देने से कुछ न होगा। इसलिए सारे गाँव का एक परिवार बनाकर हमें आगे काम करना चाहिए। हम बैलों से काम लेते हैं और उनकी सँभाल भी करते हैं। गाँव के गरीब भाई तो अपने भाई ही हैं। उनकी चिन्ता हमें करनी चाहिए। जो लोग श्रम करनेवाले हैं, उनकी बराबर देखभाल करनी ही चाहिए। यह बात गाँव के हित में है और हम सबके हित में है। यह हम समझेंगे तो ग्राम-स्वराज्य बिल्कुल आसान हो जायगा। ग्रामदान का अर्थ सिर्फ जमीन बाँटना ही नहीं है। ग्रामदान का अर्थ है—सारा गाँव जिम्मेवार है और जमीन की मालिकी ग्राम-सभा की है। ग्राम-सभा सर्व-सम्मति से जो निश्चित करेगी, वही गाँव में चलेगा। ग्रामदान के गाँव में सरकारी कानून प्रवेश नहीं कर सकेगा, इसलिए ग्रामराज्य की स्थापना हो तो ग्रामवाले सुखी हो जायँगे। लुहार, सुतार, बुनकर आदि गाँव में होने चाहिए। हरएक को आधा एकड़ जमीन दी जायगी, जिसमें सब लोग तरकारी वगैरह बोयेंगे, 'किचन-गार्डन' बनायेंगे। बाकी की जमीन के बीस-पचीस एकड़ के टुकड़े करने हों तो वैसा कर सकते हैं। अलग-अलग जमीन देनी हो तो उस तरह बँटवारा कर सकते हैं। गाँव के भूमिहीनों को भी जमीन का हिस्सा मिलना चाहिए। ज्यादा जमीन न हो तो गाँव में ग्रामोद्योग शुरू करने चाहिए। गाँव के हर परिवार को काम नहीं दे सकते हैं तो खाना देने की जिम्मेवारी ग्राम-सभा की होगी। इस तरह से ग्रामदान होगा तो सारे गाँव के लोग एक-दूसरे की चिन्ता करेंगे।

जमीन की मालिकी व्यक्तिगत नहीं रहेगी। आज बड़े मालिक के जीवन का स्तर ऊँचा है तो वह एकदम नीचे नहीं आ जायगा। ऐसे लोगों को दस साल तक राहत मिले, इस मुताबिक ज्यादा जमीन उन्हें देनी चाहिए। ग्रामदान याने जिसमें सबका समाधान हो। ग्रामदान अभय-दान है। ग्रामदान से डरने जैसा कुछ भी नहीं है। ग्रामदान के सामने सरकार का कानून हैरान नहीं कर सकेगा। सरकार का कानून अच्छे उद्देश्य से बना हो तो भी वह नुकसान करता है। इसमें हरएक मनुष्य का अलग-अलग विचार नहीं होता है। इससे कुछ लोगों के साथ न्याय होता है तो कुछ

लोगों के साथ अन्याय ही होता है। जैसे स्टीम रोलर सबको एक साथ पीसता है, उस तरह कानून भी सबको समान रीति से तकलीफ देता है। परन्तु ग्रामदान होने के बाद ग्राम-सभा जो निश्चित करेगी, वही कानून चलेगा।

ग्राम-स्वराज्य से लाभ

कुछ लोग उल्टा समझते हैं कि जिस तरह जमीन बाँटने के लिए कानून करते हैं, उसी तरह बाबा भी हमारी जमीन लूटने के लिए आया है। इसलिए उन्हें भय मालूम होता है। मैं उनसे कहता हूँ कि आप क्यों घबड़ाते हैं? आप अगर भय में अभय देखेंगे और अभय में भय देखेंगे तो आपका भला होगा। गाँव को अपना स्वतन्त्र राज्य बनायेंगे तो गाँव के सब लोगों को समाधान होगा। ग्राम-स्वराज्य होगा तो अपने देश की सरकार भी उसमें दखल नहीं देगी। फिर भी सरकार की मदद मिलेगी। आपके गाँव में बाहर से कोई दखल न दे और बाहर से आपको मदद मिले, ऐसी योजना आपको कोई सुझाये तो भले ही उसमें थोड़ा त्याग करना पड़े, परन्तु स्वार्थ के लिए उपयोगी है या हानिकारक, यह आप सोचें। इस तरह सोचेंगे तो आपको ग्रामदान की भूमिका से ज्यादा सुरक्षित दूसरी कोई भी भूमिका नहीं लगेगी। मुझे बहुत अर्थशास्त्री मिलते हैं और चर्चा करते हैं। ग्रामदान से दूसरी अच्छी, सुरक्षित और ज्यादा हितकारी योजना किसीने अभी तक नहीं बतायी। ग्रामदान से गाँवों का किला इतना मजबूत बनेगा कि बाहर से कोई हमला नहीं कर सकेगा। साथ-साथ बाहर से मदद भी मिलेगी। इसके सिवाय दूसरा कोई उद्देश्य ग्रामदान का नहीं है।

त्याग-भावना किसी वर्ग की बपौती नहीं

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि जो दरिद्री होते हैं, वे इस नीति-धर्म का संदेश जल्दी समझते हैं, धनिक जल्दी नहीं समझते। मैं कहता हूँ कि यह एकांगी तुलना है। इतिहास में आप देखेंगे कि धर्म को समझनेवाले दरिद्र समाज से जिस तरह निकले हैं, उसी तरह श्रीमान् समाज से भी निकले हैं। भगवान् शंकराचार्य अत्यन्त गरीब कुल में जनमे थे तो भी उन्होंने अद्वैत बुद्धि प्राप्त की। इससे लगभग उलटी मिसाल गौतम बुद्ध की है। वे राजपुत्र थे और उनका हृदय करुणा से भरा था। त्याग करके वे बाहर निकले और उन्होंने सारे जीवन में करुणा के सिवाय दूसरा कोई काम ही नहीं किया। महात्मा गांधी इन दोनों वर्गों में से नहीं थे। न तो वे शंकराचार्य जैसे दरिद्र परिवार के थे और न गौतम बुद्ध जैसे श्रीमान् वर्ग के। वे मध्यम वर्ग के थे। तीनों महापुरुष भिन्न-भिन्न वर्गों के थे। इसलिए ऐसा कोई नियम नहीं है कि यह भावना फलाने ही वर्ग में होगी। धर्म-भावना अन्दर की चीज है। यह दारिद्र्य में भी विकसित हो सकती है और ऐश्वर्य में भी विकसित हो सकती है। जनक और शुकदेव जैसी मिसाल हमारे सामने है। मिथिला नगरी जल रही है, पर इसमें मेरा कुछ भी बिगड़ता नहीं है और मेरा कुछ भी नहीं जलता है—ऐसा निर्णय करके जनक राजा बैठा था और शुकदेव सारा त्याग करके नग्नावस्था में चले गये थे। यह सारा अलग-अलग दीखता है, परन्तु दोनों का पंथ एक ही है। सुखी लोगों में धर्म-बुद्धि नहीं होती है, ऐसा नहीं है।

जहाँ लक्ष्मी, तहाँ विष्णु

बहुत लोग मुझसे कहते हैं कि यहाँ ग्रामदान नहीं होगा, क्योंकि यहाँ पैसे के लिए फसल होती है। याने जहाँ पैसा रहता है, वहाँ ग्रामदान नहीं होता है। मैं पूछना चाहता हूँ कि लक्ष्मी कहाँ रहती है? जहाँ विष्णु रहता है, वहीं न? तो फिर खेड़ा जिले में विष्णु नहीं रहता है क्या? लक्ष्मी अकेली रहती है क्या? जहाँ वैष्णव रहते हैं, वहाँ ग्रामदान का विचार नहीं होगा क्या? यह सारा विचार सादा और सरल है। इसमें सारी जमीन इकट्ठी नहीं करनी है। जमीन की जो व्यवस्था करनी है, वह गाँववाले तय करें। मालिकी गाँव की हो, इतनी ही महत्त्व की बात है। मैं अपना विचार आपपर लादूँ, इसका नाम ग्रामदान नहीं है। आपको जो कुछ करना है, वह समझ-बूझकर करना चाहिए। ग्राम-स्वराज्य का अमुक ही नमूना होना चाहिए, ऐसा कोई बंधन नहीं है। जैसे-जैसे समाज की बुद्धि होगी, तदनुसार गाँव का नमूना बनेगा।

खेड़ा जिले से तीन अपेक्षाएँ

खेड़ा जिले के लिए मैं तीन कार्यक्रम रखता हूँ:

(१) हर घर में सर्वोदय-पात्र होना चाहिए।
(२) शांति-सैनिक मिलने चाहिए।
(३) ग्रामदान के आधार पर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना होनी चाहिए।

ये तीनों काम यहाँ जरूर होंगे, ऐसी श्रद्धा से यह जिला छोड़कर मैं आगे बढ़ रहा हूँ। ◆◆◆

ग्राम-पंचायत-सम्मेलन में

आणंद (बम्बई-राज्य) १-११-'५८

चित्त-शुद्धि ही भूदान-आन्दोलन की कसौटी

आज रास्ते में कई व्यक्तियों के साथ अच्छी चर्चा हुई। इस तरह एक-एक व्यक्ति के साथ चर्चा होती है तो उसकी शंकाओं का निरसन हो सकता है। उनके हृदय में मेरा सीधा प्रवेश होता है और मेरे हृदय में उनका प्रवेश होता है। व्यक्तियों का हृदय होता है, संस्था में संविधान, नियमावली आदि होती है, परन्तु हृदय नहीं होता है। इसलिए हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में संस्था का ज्यादा स्थान नहीं है।

सामूहिक धर्म-परिवर्तन

इन दिनों सामूहिक धर्म-परिवर्तन चलता है। एक-एक सभा में दस-दस हजार लोग एक साथ बौद्ध-धर्म की दीक्षा लेते हैं और अपने धर्म का त्याग करते हैं। लेकिन इन्सान पैदा होता है तो अकेला ही और मरता है तो भी अकेला ही। परमेश्वर के सामने भी वह अकेला ही खड़ा होता है। उस वक्त परमेश्वर उससे यह नहीं पूछता कि "तेरे बाप ने, तेरे बेटे ने, तेरे पति ने, तेरे समाज ने, तेरी संस्था ने या तेरे देश ने क्या किया?" वह तो यही पूछता है कि "तूने अच्छा या बुरा क्या किया।" वहाँ न दूसरे किसीकी वकालत चलेगी, न दूसरे का किया हुआ कुछ अपने काम में आयेगा। इस तरह एक साथ सारे समाज का धर्म-परिवर्तन धर्म की विडंबना है। इस तरह से मनुष्य का हृदय नहीं बदलता है। मनुष्य के हृदय में जो भाव रहते हैं, उनका संस्था में कोई

स्थान नहीं है। नियम ही संस्था का प्राण है। फिर उन नियमों के एक-एक अक्षर का अर्थ निकालने की कोशिश चलती है।

वेद का अध्ययन या संविधान का ?

बहुत पुरानी, सन् १९२५ की बात है। उस जमाने में मैं कांग्रेस का सदस्य था। १९२५ के बाद मैं उससे मुक्त हुआ, बापू १९३४ में मुक्त हुए। उस जमाने में मित्रों ने मुझसे पूछे बगैर मेरा नाम नागपुर प्रदेश कांग्रेस कमेटी में रख दिया। उसकी एक सभा के लिए मैं वर्धा से नागपुर जाने के लिए दोपहर बारह बजे निकला। ट्रेन में पढ़ने के लिए मैंने ऋग्वेद की पुस्तक साथ ले ली। तीन बजे सभा थी। सब सदस्यों को संविधान की एक-एक किताब दी गयी थी। सभा के आरंभ में ही एक भाई ने आक्षेप उठाया कि "सभा के लिए कम-से-कम अमुक दिनों की नोटिस मिलनी चाहिए थी, जो नहीं मिली, इसलिए यह सभा गैरकानूनी है, देखिये संविधान का पन्ना चार, नियम पाँच।" हम सबने वह पन्ना खोला। दूसरे भाई ने कहा कि "नियम तो ठीक है, परन्तु विशेष परिस्थिति में जल्दी सभा बुलाने का हक है।" फिर चर्चा चली, जिसमें एक के बाद एक नियम का आधार लिया गया। मैं भी किताब खोलकर नियम पढ़ता गया। मैं सोचने लगा कि सभा गैरकानूनी साबित हो जाय तो हम सब मूर्ख साबित होंगे। मेरा उन नियमों का कुछ अभ्यास नहीं था। आखिर में यह निर्णय हुआ कि सभा गैरकानूनी नहीं है। फिर चर्चा शुरू हुई। थोड़ी ही देर में भोजन के लिए सभा स्थगित हुई। रात में फिर सभा हुई, जिसमें मैं नहीं गया। दूसरे दिन वर्धा पहुँचने पर मैंने इस कमेटी की सदस्यता और कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से भी इस्तीफा दिया। क्योंकि मैंने देखा कि इस संस्था में रहते हुए अक्ल से काम करना हो तो संस्था के संविधान का ठीक अध्ययन करना होगा। अब मैं ऋग्वेद का अध्ययन करूँ या उस संविधान का ? संविधान के अध्ययन में सार नहीं है, वेदोपनिषद् के अध्ययन में ही कल्याण है, यह सोचकर मैं उस संस्था से मुक्त हुआ। सभाओं में एक-दूसरे के सामने बैठनेवाले व्यक्ति मनुष्यता को नहीं, बल्कि नियम को लेकर बैठते हैं। मुझे वह सारा बिलकुल शुष्क, नीरस मालूम होता है।

सेवकों के रहते गंदगी क्यों ?

अभी पाकिस्तान में अयूबखाँ का राज आया तो एक क्षण में सारी राजनीतिक पार्टियाँ खत्म हुईं। इसका मतलब यह है कि उनमें कुछ सार ही नहीं था, उनके पीछे कोई नैतिक बल ही नहीं था। और ऐसी सारी संविधानवाली संस्थाएँ सेवा का काम चलाती हैं। इन दिनों इतनी सारी 'सर्विसेस' (सेवाएँ) चलती हैं कि मैं तो देखकर घबड़ा जाता हूँ। खाना परोसना भी 'सर्विस' है। विशेष व्याख्यान भी 'सर्विस' है। फिर 'सिविल' और 'मिलिटरी सर्विसेस' तो हैं ही। हमारी सरकार ने साढ़े सैंतीस करोड़ जनता की सेवा के लिए पचपन लाख नौकर रखे हैं। याने दो सौ की सेवा के लिए तीन नौकर। इसका मतलब यह हुआ कि चालीस परिवारों की सेवा के लिए तीन नौकर। क्या यह कोई सेवा है ? बड़े आश्चर्य की बात है कि इतनी सारी सेवा चलते हुए भी सेवा की जरूरत क्यों होती है ? इतने सारे सेवक होते हुए भी इतनी गंदगी क्यों पड़ी है ? देश में यह सब चलता है और लोग उसे सहन करते हैं। भारत में सेना पर जो ३०० करोड़ रुपये का खर्च होता है, उससे मुझे यह पचपन लाख सेवकों का खर्च ज्यादा भयानक मालूम होता है।

संस्था में दंभ और असत्य

यह सारा इसलिए है कि हृदय के बिना तंत्र चलता है। यहाँपर ३३ करोड़ देवता तो पहले से थे ही, उनमें तंत्र देवता भी आकर जुड़ गया है। उसके अपने नियम आदि होते हैं। उसकी भक्ति करते-करते हमारा जीवन सुखी बन रहा है। आज इन्सान किसीके साथ सीधी बात भी नहीं कर पाता। बोलते समय मालूम होता है कि संस्था के वाहक अपना हृदय ही नहीं खोल पाते। इस तरह सारा जीवन दंभमय बन रहा है। गीता में आसुरी संपत्ति के वर्णन में दंभ को प्रधान स्थान दिया है। इन दिनों पोशाक में, चाल-चलन में, रीति-रिवाज में, स्वागत में, पूजा-पाठ में, सर्वत्र दंभ चलता है। इसलिए सत्य का कोई पता ही नहीं चलता है। बाजार में, व्यापार में, व्यवहार में, असेंबली के काम में, वकालत में, राजनीतिज्ञों के काम में, शादियों में—सभी जगह असत्य चलता है। इसके समर्थन में महाभारत के कुछ ऐसे वचन भी बताये जाते हैं, जिनमें कहा गया है कि शादियों वगैरह में असत्य मुआफ है। इन दिनों काले बाजार की निन्दा की जाती है, परन्तु हिन्दुस्तान का सफेद बाजार भी काला ही है। बाजार में बेचनेवाला किसी चीज का दाम बारह आने कहता है तो खरीदनेवाला उसे दो आने में माँगता है। फिर एक कहता है कि दस आने में लो तो दूसरा कहता है कि तीन आने में दो। इस तरह अवतार, आरोहण करते-करते आखिर दोनों का कुछ मेल होता है और तब सौदा तय होता है। क्या यह कोई इन्सान की दानत कहलायेगी ?

संस्थाओं द्वारा हृदयशून्य स्वागत

जब समाज की यह हालत है तो मुझे संस्थाओं में बोलने में रस नहीं मालूम होता। आम समाज में बोलना मुझे पसंद है, क्योंकि वह तो नारायण की पूजा है। व्यक्तियों के साथ बात करने में भी मुझे रस मालूम होता है। पर संस्थावाले तो हृदय घर पर रखकर आते हैं, फिर उनकी बुद्धि ही काम करती है। इसलिए मेरा संस्थावालों पर ज्यादा विश्वास नहीं है। आज जब मुझसे कहा गया कि यह ग्राम-पंचायतवालों की सभा है तो मैंने सोचा कि इन 'वालों' की सभा में इन्सान दूर रहते हैं। वहाँ तो 'लेबल' वाले ही आते हैं। मेरी यात्रा में कभी-कभी कोई आकर कहता है कि मैं म्युनिसिपैलिटी की तरफ से उसके अध्यक्ष के नाते आपका स्वागत करता हूँ। ऐसा कहकर वह सूत की एक गुंडी देता है। दूसरा आकर कहता है कि मैं कांग्रेस की तरफ से यह सूत-गुंडी दे रहा हूँ। इतनी बड़ी संस्था कांग्रेस और उसकी तरफ से सिर्फ एक गुंडी दी जाती है ! यह इसीलिए होता है कि सारा स्वागत ही प्रातिनिधिक होता है। उसमें इन्सान का दिल नहीं होता। परन्तु जब मेरे स्वागत के लिए बच्चे आते हैं तो देखिये उनका प्रेममय हास्य ! यों जब कोई हृदय से मेरा स्वागत करता है, तब उसमें मुझे साक्षात् नारायण का दर्शन होता है। पर जब कोई प्रतिनिधि आकर मेरे गले में माला डालता है तो मुझे वह फाँसी ही मालूम होती है। इन प्रतिनिधियों से मैं बहुत डरता हूँ। वे न नर होते हैं, न नारायण। उनकी गिनती किसमें की जाय, इसका पता ही नहीं चलता है। इसलिए उनका स्वागत मुझे अत्यन्त नीरस मालूम होता है।

बुद्ध ने सत्ता क्यों छोड़ी ?

बड़ी-बड़ी संस्थाएँ जो काम नहीं कर सकती हैं, वह काम एक व्यक्ति कर सकता है। एक बुद्ध भगवान् ने कितना बड़ा परिवर्तन किया। उन दिनों सत्ता पर इतनी श्रद्धा बैठी थी कि ऐसा माना जाता था कि सत्ता से ही क्रान्ति हो सकती है, सेवा हो सकती है। बुद्ध भगवान् के हाथ में तो सत्ता थी, वे राजपुत्र थे। अगर सत्ता से सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक क्रांति हो सकती तो बुद्ध भगवान् अपने हाथ की सत्ता छोड़कर क्यों निकलते ? उनके लिए उनके पिताजी ने ऐसी योजना की थी कि उन्हें दुःख का दर्शन ही न हो, सुख का ही दर्शन हो। फिर भी उन्होंने कुछ दुःख देखा तो वे समझ गये कि मुझे जरा भी दुःख का दर्शन न हो, ऐसा पक्का बंदोबस्त होने पर भी दुःख का दर्शन हो रहा है तो समाज में कितना दुःख होगा। फिर वे घर छोड़कर निकल पड़े। अगर सत्ता के जरिये समाज-परिवर्तन होता तो बुद्ध भगवान की गिनती मूर्खों में की जाती। लेकिन आज की दुनिया उनकी गिनती मूर्खों में नहीं करती है, बल्कि समझती है कि समाज को उनके उपदेश की सख्त जरूरत है। पं० नेहरू बुद्ध भगवान के भक्त हैं। वे कहते हैं कि भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष बुद्ध भगवान हैं और उनकी तालीम की सारी दुनिया को जरूरत है। २५०० साल के बाद भी आज उनकी जरूरत महसूस की जा रही है। वे तो सत्ता छोड़कर चले गये थे, लेकिन हमारा सारा दिल तो संस्थाओं में बसता है। संस्था की पकड़ में इन्सान खुला नहीं रहता।

पक्ष में विचार-स्वातंत्र्य नहीं

आज एक भाई मुझसे पूछ रहे थे कि "पक्ष में रहने में क्या हर्ज है, मैं तो समझता हूँ कि विचार के लिए पक्ष जरूरी है।" मैंने कहा कि भले आदमी, विचार को खत्म करने के लिए पक्ष उपयोगी हैं, वहाँ विचार-स्वातंत्र्य नहीं दिया जाता। पक्ष का निर्णय होने पर फिर 'ह्विप' (लगाम) लगता है। असेंबली में 'ह्विप' आने पर फिर दिमाग का कोई काम नहीं होता है, हाथ का ही होता है। इन दिनों यही परिभाषा चलती है कि फलानी मिल में पाँच सौ 'हैण्ड्स' (हाथ) हैं और फलाना उनका 'हेड' (सिर) है। इस तरह कुछ 'हेड्स' और कुछ 'हैंड्स', कुछ सिर, कुछ धड़ ! यों राहु और केतु में सारा समाज बँटा हुआ है। जो हाथ हैं, उनके सिर नहीं और जो सिर हैं, उनके हाथ नहीं। हाथवालों का काम असेंबली में केवल हाथ ऊँचा करना ही है। कठिन प्रसंग पर उन्हें वहाँ उपस्थित रहना जरूरी है। दूसरे समय पर वे उपस्थित न रहें तो भी हर्ज नहीं। इतना सारा यांत्रिक काम चलता है कि प्रजा को उसमें कोई रस ही नहीं मालूम होता है।

हृदयशून्य 'शाही' निरर्थक

इस हालत में चाहे जिस 'शाही' का चाहे जिस 'शाही' में परिवर्तन हो जाता है। 'कोरा कागज काली स्याही—' की स्थिति है। लोकशाही, तानाशाही आदि लाल-काली स्याही जैसी होती है। प्रजा को उसमें कोई दिलचस्पी नहीं। वह तो सिर्फ अपना भला देखती है। अगर उसका भला होता है तो उसे अच्छा लगता है। प्रजा यह नहीं सोचती कि लोकशाही में हम पीसे जा रहे हैं, बेकारी और शोषण बढ़ रहा है, तालीम का कोई इन्तजाम नहीं है, फिर भी लोकशाही चल रही है, इसलिए हम धन्य हैं। क्या बकरे को इस बात से खुशी होती है कि उसका गला शेफील्ड की विदेशी छुरी से नहीं, बल्कि अलीगढ़ की स्वदेशी छुरी से काटा जा रहा है ? क्या वह समझता है कि स्वदेशी छुरी से गला कटने से मेरा जीवन धन्य है ? उसी तरह ये सब 'शाही' क्या कर रही हैं ? दिल में गरीबों के लिए दर्द हो, तब किसी 'शाही' में जान आयेगी। परन्तु आजकल हृदयशून्य 'शाही' चलती है, इसलिए एक का दूसरे में रूपान्तर हो जाता है। फ्रांस में गणतंत्र चलता था। बीच में नेपोलियन आया तो गणतंत्र गया। उसके बाद राज्यक्रांति हुई और लोकशाही आयी। अब जनरल देगाल के हाथ में सत्ता चली गयी। इस सबका एक ही कारण है कि इन्सान इन्सान नहीं रहे हैं। बाप भी बेटे के साथ इन्सान के नाते से नहीं बरतता। कोई प्रेसिडेंट है, कोई सेक्रेटरी है तो कोई कुछ है, परन्तु इन्सान नहीं है। आप जब परमेश्वर के सामने खड़े होंगे तो बाप के, बेटे के, अध्यक्ष के या सेक्रेटरी के नाते नहीं, बल्कि एक जीव के नाते खड़े होंगे। वहाँपर यही देखा जायगा कि तेरे हृदय में क्या चलता है।

योगी और वेश्या का दृष्टान्त

रामकृष्ण परमहंस ने एक कहानी कही है। एक योगी भक्त और एक वेश्या आमने-सामने रहते थे। योगी के घर में योगी का ढंग चलता था, भजन चलता था और वेश्या के घर में उसका ढंग चलता था। दोनों की मृत्यु एक ही दिन हुई। उन्हें ले जाने के लिए ऊपर से दूत आये। विष्णुदूत वेश्या को लेकर स्वर्ग की ओर चले। यमदूत योगी को लेकर नर्क की ओर चले। योगी सोचने लगा कि "यह कैसा अन्याय है। यह तो वैसा ही है, जैसे पोस्ट ऑफिस से कई दफा एक का पत्र दूसरे के पास चला जाता है। यमदूतों को वेश्या के घर जाना चाहिए था, सो वे मेरे घर आये और विष्णुदूतों को मेरे घर आना चाहिए था, सो वे उधर गये ! यह तो अन्धेर नगरी है।" तब दूतों ने उससे कहा कि "हमारे यहाँ अन्धेर नगरी नहीं है, प्रकाश ही है। यहाँ कुछ भी गड़बड़ नहीं होती, हरएक का ठीक-ठीक रेकार्ड रखा जाता है। तुम जरा नीचे देखो।"

विमान में बैठे हुए योगीराज ने नीचे देखा तो धरती पर उसके शरीर को सजाया गया था और उसका जुलूस निकाला गया था। रामधुन गाते हुए सब लोग उस शरीर को श्मशान ले गये और वहाँ पर उसे चंदन की चिता पर रखा गया। दूतों ने उससे कहा कि "देखो, तुम्हारे लायक फल तुम्हें मिला।" उसने फिर नीचे देखा तो उधर वेश्या की लाश को किसीने उठाया तक नहीं था, इसलिए गीध और कुत्ते उसे फाड़-फाड़कर खा रहे थे। दूतों ने कहा कि "वेश्या के शरीर ने बुरा काम किया, इसलिए उसे उसका फल मिला। तुम्हारे शरीर ने अच्छा काम किया, इसलिए तुम्हें अच्छा फल मिला। परंतु मन की बात देखो, तुम शरीर से भक्ति करते थे, परन्तु तुम्हारे मन में क्या था ? तुम यही सोचते रहते थे कि उधर वेश्या के घर में कैसा सुन्दर संगीत और नृत्य चल रहा है, वहाँ बड़ा मजा चलता है, मेरा जीवन तो नीरस है। पर वह वेश्या यद्यपि शरीर से बुरा कर्म करती थी, फिर भी मन में हमेशा यही सोचती रहती थी कि 'सामने योगी के यहाँ कितना अच्छा भजन चल रहा है, मैं कितनी पापी हूँ, जो भजन नहीं करती। मैं इस जीवन से ऊब गयी हूँ, परन्तु मुक्त नहीं हो पाती हूँ !' भगवान् तो मन को जानते हैं और उसके अनुसार फल देते हैं। परन्तु लोग बाहर का ही जानते हैं और उसीके अनुसार उन्होंने वेश्या के शव की उपेक्षा की और योगी के शरीर का जुलूस निकाला।"

लेबल हटाकर भीतर देखो

इसलिए जरूरत इस बात की है कि हम जरा अपने मन खोलें। हम अलग-अलग लेबल चिपकाकर काम करते हैं, मानवता को नहीं देखते। जब तक लेबल चिपके हैं, तब तक हमारी दृष्टि अन्दर नहीं जाती। इसीलिए ज्ञानियों ने कहा है कि सब उपाधियों को छोड़कर अन्दर देखना चाहिए। मैं शिक्षित हूँ, सयाना हूँ, धनी हूँ, गरीब हूँ, वकील हूँ, डॉक्टर हूँ, बाप हूँ, बेटा हूँ, असेम्बली का मेंबर हूँ, किसी संस्था का अध्यक्ष हूँ, इस तरह जो 'मैं-मैं' चलता है, उसको अलग करके अन्दर देखो कि अपना स्वरूप क्या है। उस स्वरूप में शुद्धि है या अशुद्धि, यह देखो। अगर अशुद्धि है तो तुम्हारा बेटा या पत्नी न तो उसे देख सकते हैं, न उसे धो सकते हैं। अंदर क्या चल रहा है, इसका पता दूसरों को नहीं हो सकता है। इसलिए यह काफी नहीं है कि तुम बाप के नाते बरतो, बल्कि यह जरूरी है कि तुम इन्सान के नाते बरतो। जरा थोड़ी देर अन्दर गोता लगाकर देखो। वहाँ जो मल दीखे, उसे धो डालो। इस तरह मल धोया करोगे तो तुम्हारे जीवन में रस आयेगा। फिर तुम दूसरे-तीसरे जो भी काम करोगे, वे सब ठीक चलेंगे। आज इन्सान बाह्य उपाधियों को लेकर दुनिया में घूमता है। इसीसे उसके अन्दर का तत्त्व ढँक जाता है। तभी तो दूसरों के साथ बात करने में उसका हृदय खुलता नहीं। उस हालत में हृदय-शुद्धि या हृदय-परिवर्तन कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए आप सारी उपाधियों को छोड़ दीजिये और जरा अन्दर झाँककर देखिये कि हम कौन हैं। जब मनुष्य को यह आदत हो जायगी, तब उसके हाथ से उत्तम कृति होगी और सारे देश का काम भी बहुत तेजी से होगा।

आज प्रेम है कहाँ?

हृदय खुला न रहे, ढँका रहे तो तीन-चार बच्चेवाले, पचीस साल तक साथ रहे हुए पति-पत्नी भी एक-दूसरे को ठीक से पहचानते नहीं। वे एक-दूसरे को ठीक से पहचानते नहीं। वे एक-दूसरे के लिए मन में शंका रखते हैं। उनका अंतर्मिलन नहीं होता है, केवल बाह्य मिलन होता है। लोग प्रेम की बातें करते हैं, परन्तु आज प्रेम है कहाँ? अगर प्रेम हो तो दुनिया का रंग ही पलट जायगा। आज प्रेम के नाम पर जो चल रहा है, वह भोग ही है। पत्नी पति की रोज सेवा करती है, परन्तु पति उसका कभी खयाल नहीं करता। लेकिन एक दिन सेवा न करके कुछ जवाब दे दे तो पति उसको याद रखता है। जिन्दगीभर की हुई सेवा वह याद नहीं रखता। वह समझता है कि पति के नाते मैं सेवा लेने का हकदार हूँ। इसी तरह बाप-बेटों में, भाइयों में भी यही बात चलती है। भाई की सम्पत्ति पर वे अपना हक बताकर उसके लिए लड़ते हैं।

कार्यकर्ता हृदय-शुद्धि करें

जब तक यह सब चलता रहेगा, तब तक हृदय नहीं खुलेगा और हृदय-शुद्धि नहीं होगी। किसी भी आन्दोलन में, फिर वह भूदान-ग्रामदान का ही क्यों न हो, हृदय-शुद्धि की प्रक्रिया न हो तो कुछ ताकत नहीं आयेगी। हम चाहे जितने मील चले हों, हमने लाखों एकड़ जमीन हासिल की हो और उसका वितरण किया हो, उससे कुछ लोग सुखी हुए हों; परन्तु फिर भी उसमें यदि हृदय-शुद्धि की क्रिया न होती हो, तो इस आंदोलन से भावक्रांति नहीं होगी। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हमारे कार्यकर्ता हृदय-शुद्धि की ओर ध्यान दें।

चित्त-शुद्धि ही एकमात्र कसौटी

इन दिनों मान, अपमान, प्रतिष्ठा आदि की बातें बहुत चलती हैं। बाबा के स्वागत में भी यही चलता है। अगर चार पक्षों के व्यक्ति स्वागत के लिए आयें तो लोग कहते हैं कि फलानी पार्टीवाले ने पहले स्वागत किया, हम नहीं कर सके। स्वागत में वह बोला, मैं नहीं बोला। हमें और उसे एक ही मंच पर बैठाया गया। सोचने की बात है कि ये दोनों यमराज के एक ही मंच पर बैठनेवाले हैं। दोनों को एक ही सराय में जाना है। फिर भी यहाँ यह चलता है कि यहाँ हम दोनों को एक ही मंच पर क्यों बैठाया गया, क्या वह मेरी बराबरी का है। वह पाँच मिनट बोला और मुझे तीन ही मिनट मिले। वह पहले बोला, मुझे पहले बोलने नहीं दिया गया, यह सब कहा जाता है। पर दोनों पहले कैसे बोल सकेंगे, किसी एक को ही पहले बोलना होगा। हाँ, यह हो सकता है कि चार-पाँच व्यक्ति एक साथ बोलें।

कभी-कभी हम गाँव में प्रवेश करते हैं तो सारे कुत्ते एक साथ भोंकने लग जाते हैं। मुझे वह स्वागत बड़ा अच्छा मालूम होता है। उपनिषदों के एक ऋषि से जब पूछा गया कि "कुत्ता क्या भोंकता है, जानते हो?" तो ऋषि ने कहा कि वह ॐ का जप करता है और 'ओम्' 'ओम्' कहता है। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।' ऋषि को कुत्ते के भोंकने में भी ओंकार-ध्वनि सुनाई दी और हम इन्सान होकर भी इतने बड़े भूदान के काम में मान-अपमान आदि सब लाते हैं। अगर इससे चित्त-शुद्धि नहीं होती है तो धिक्कार है इस काम को। फिर इस आंदोलन की कौड़ी कीमत नहीं। इसलिए आप सबको चित्त-शुद्धि करनी चाहिए। भूदान-ग्रामदान तो होने ही वाला है। भूमि यहीं रहनेवाली है और हम जानेवाले हैं। इसलिए दान कम मिला या ज्यादा मिला, इसका कोई मूल्य नहीं है। मूल्य इसीका है कि इस काम के जरिये कितने लोगों की हृदय-शुद्धि हुई। गांधीजी हमेशा कहते थे कि स्वराज्य का आंदोलन हृदय-शुद्धि का आंदोलन है, फिर भी लोग तो मानते थे कि वह लेने का आंदोलन है। परन्तु गांधी बच्चों से जैसे काम कराये जाते हैं, वैसे ही हमसे उपवास आदि कराते थे। इसलिए चित्त-शुद्धि ही मुख्य वस्तु है। फिर आंदोलन खादी का हो, ग्रामोद्योग का हो या भूदान का हो। जमाने की माँग के मुताबिक आंदोलन तो हुआ ही करते हैं, परंतु उसी आंदोलन का परिणाम अच्छा आयेगा, जिसके जरिये लोगों की चित्त-शुद्धि होगी।

◆◆◆

अनुक्रम

१. मैं नया समाज...	धाणधा	२ जनवरी '५९	पृष्ठ ४१
२. खेड़ा जिले से तीन अपेक्षा.	खंभात	६ नवंबर '५९	,, ४३
३. चित्त-शुद्धि ही भूदान	आणंद	१ नवंबर '५९	,, ४५

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।